विपश्यना

[साधकों का मासिक प्रेरणापत्र]

रजि. नं. १९१५६/७१
पोस्टल रजि. नं. NS (M)-16/84

वर्ष १३ • बम्बई • बुद्धवर्ष २५२७ • वैशाख पूर्णिमा शक] • दि. १५-५-१९८४ • अंक ११

सार्वजनीन प्रवचन

राजस्थानकी राजनगरीके शांतिप्रेमी नागरिको !

शांति किसे नहीं चाहिए ? सभी तो अशांत हैं ! सभी बेचैन हैं। बेचैन हैं इसीलिए शांतिकी खोजमें न जाने कहाँ-कहाँ भटकते हैं ? परन्तु बाहर शांति प्राप्त नहीं होती। शांतिकी खोज अपने भीतर करनी होगी।

पूर्वकालके भारत के वज्ञानिकों ने सत्यकी शोध की, परम सत्य का अनुसंधान किया तो उसे इस साढ़े तीन हाथकी कायाके भीतर ही पाया। यह जो सत्यकी शोध है, परम सत्यके अनुसंधान की जो तकनीक है उसीको विपश्यना कहते हैं। स्वयं अनुभूतिके स्तर पर अपने ही भीतर परम सत्यका साक्षात्कार करना है। परम शांति स्वतः प्राप्त हो जायेगी। आत्म शोध करना है, सत्य शोध करना है। अपने बारेमें जो सच्चाई है उसकी स्वयं खोज करनी है। इस खोजके रास्ते एक भी कदम उठा लें तो दुःखोंसे छुटकारा होना शुरू हो जाय। इस शोध के रास्ते जैसे जैसे कदम बढ़ाते जांय; वैसे वैसे सारी बेचैनियाँ स्वतः दूर होती चली जाँय। हर कदम परमशांतिकी ओर ले जानेवाला है। हर कदम दुःखोंसे विमुक्त करनेवाला है। आत्म शोध, आत्मशोधनके लिए है। अपने बारेमें जो भी सच्चाई है उसे जैसे जैसे अनुभूतिके स्तर पर जानते चले जायेंगे वैसे वैसे अन्दर के विकार दूर होते चले जायेंगे। मानस निर्मल होता चला जायेगा। इस प्रकार समस्त दुःखोंके मूल कारण ही दूर होते चले जायेंगे। अन्ततः दुःखोंका नामलेश नहीं रह पायेगा।

इस शोध का काम स्वयं करना होता है और अपने भीतर करना होता है। भारत के महान वैज्ञानिकोंने यही काम किया। भारतके ऋषियोंने यही काम किया। भारत के संतोंने यही काम किया। स्वयं सत्यका दर्शन किया। अपने बारेमें जो सच्चाई है उसका स्वयं साक्षात्कार किया। कोई शोधका काम शुरू करे तो पहले स्थूल स्थूल सच्चाई ही सामने आती है। पर जैसे जैसे यात्रामें आगे बढ़ता है, स्थूल से सूक्ष्म, सूक्ष्मसे सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतर से सूक्ष्मतम सत्य प्रकट होने लगता है।

यह सारा शरीर-स्कंध क्या है ? जिसे "मैं मैं" किए जा रहा हूँ, जिसे "मेरा-मेरा" किए जा रहा हूँ। जिसके साथ इतना गहरा तादात्म्य स्थापित कर लिया है। जिसके प्रति इतनी गहरी आसक्ति पैदा कर ली है। बुद्धि के स्तर पर तो खूब समझता है-- यह शरीर "मैं" नहीं हूँ यह शरीर "मेरा" नहीं है, यह शरीर "मेरी आत्मा" नहीं है। ऐसा बुद्धिके स्तर पर खूब स्वीकार करता है क्योंकि बचपन से बुद्धि पर यही लेप लगा है, यही सुनता आया है। ऐसी बात बार-बार सुनते सुनते बुद्धि इसे स्वीकारने लगी है। शरीर मैं नहीं हूँ, मेरा नहीं है, मेरी आत्मा नहीं है। पर बेचारी बुद्धिकी कौन सुनता है ? वास्तविकताके स्तर पर तो शरीर ही "मैं" हो गया है, शरीर ही "मेरा" हो गया है। कितना गहरा तादाम्य है इसके प्रति ! कितना "मैं-मेरे" का भाव है इसके प्रति ! कितनी गहरी आसक्ति है इसके प्रति ! और इसकी वजह से कितना तनाव, कितना खिंचाव ! व्याकुलता ही व्याकुलता, बेचैनी ही बेचैनी। इस सच्चाई को अनुभूति के स्तर पर जानता है।

इसी प्रकार यह चित्त-स्कंध भी। बुद्धिके स्तर पर साधक खूब स्वीकार करता है कि यह चित्त, यह मानस "मैं" नहीं हूँ, "मेरा" नहीं है, "मेरी आत्मा" नहीं है -- जैसे शरीर नश्वर है, भंगुर है, परिवर्तनशील है, बदलता ही रहता है। बुद्धिके स्तर पर इसे खूब समझता है, खूब स्वीकार करता है परन्तु वास्तविकताके स्तर पर तो यह चित्त-स्कंध ही "मैं" हो गया है, "मेरा" हो गया है। कितना गहरा तादात्म्य है इसके प्रति ! कितनी गहरी आसक्ति

धम्म वाणी

"सुत्वा सुभासितं वाचं बुद्धस्सो दिच्चबन्धुनो।
पच्चब्याधिं हि निपुणं वाळग्गं उसुणा यथाऽति"॥

थेरगाथा २९, अभयो थेरो

आदित्य बंधु भगवान बुद्धके सुभाषित वचनको सुनकर उनकी बताई हुई विधि द्वारा मैंने वस्तुस्थिति का उसी प्रकार प्रतिभेदन कर परम सत्यको जान लिया जिस प्रकार कि किसी कुशल धनुर्धारी के तीर द्वारा बालका अग्रभाग बींध दिया जाता है।

है इसके प्रति ! कितना व्याकुल, कितना अशांत, कितना बेचैन ! इस सच्चाई को अनुभूतिके स्तर पर जानता है।

और फिर इस शरीर और मन, इन दोनोंके परे एक ऐसी सच्चाई है जो नित्य है, शाश्वत है, ध्रुव है; जो एकरस है। बहुत पढ़ा है, सुना है कि ऐसा कुछ अवश्य है जो नित्य है, शाश्वत है, ध्रुव है। यह शरीरका संपूर्ण क्षेत्र अनित्य है, नश्वर है, भंगुर है। यह चित्तका संपूर्ण क्षेत्र अनित्य है, नश्वर है, भंगुर है। इन दोनों का मिला-जुला ऐंद्रिय जगतका संपूर्ण क्षेत्र अनित्य है, नश्वर है, भंगुर है। जो सचमुच नित्य, शाश्वत, ध्रुव है वह तो इंद्रियातीत है, शरीर और मनके परे है, भवातीत है, लोकातीत है। ऐसी बातें ~~बहुत पढ़ी, बहुत सुनी।~~ देशके सभी महापुरुषों ने ऐसी बातें कही है। ~~अतः~~ श्रद्धा के सहारे इसे स्वीकार करता है। बुद्धि के स्तर पर भी स्वीकार करता है। सोचता है जहाँ इतना कुछ अनित्य ही अनित्य है वहाँ कुछ तो नित्य होगा, कुछ तो ध्रुव होगा। यों बुद्धिके स्तर पर भी स्वीकार करता है, मानता है। लेकिन केवल मानता ही है, जानता तो नहीं न ? जबकि मानने और जानने में जमीन-आसमान का अन्तर है। जिसे जाना नहीं वह सत्य हमारे लिए सत्य नहीं। कोरी कल्पना है। किसी को ऐसा सत्य प्रकट हुआ, ऐसे परम सत्यका साक्षात्कार हुआ तो इसका लाभ केवल उस एक व्यक्तिको मिला। किसी दूसरेको नहीं मिल सकता। किसी दूसरेको प्रेरणा मिल सकती है, मार्गदर्शन मिल सकता है। हर व्यक्ति को परम सत्यका साक्षात्कार स्वयं करना होता है। लाभ उसे तभी होता है। श्रद्धा के स्तर पर हजार स्वीकार करते रहें, बुद्धिके स्तर पर हजार स्वीकार करते रहें, परन्तु जब तक अनुभूति के स्तर पर सत्य नहीं उतरता तब तक सत्य हमारे लिए सत्य नहीं ! तब तक उस सत्य से जो शांति मिलती है वह हमारे लिए शांति नहीं। कोरी कल्पना है। कोरी कल्पना से कहाँ शांति मिलेगी ? हर व्यक्ति को भीतर, अपने भीतर खोज करनी पड़ेगी। इस साढ़े तीन हाथ की कायाके भीतर खोज करनी पड़ेगी।

तीन हाथ एक अड़धाई,
ऐसा अम्बर चीन्हो मेरे भाई !
खोजो मेरे भाई !

भारत का यह संत समझ गया कि तीन पूरे हाथ और एक आधे हाथ की काया के भीतर जो अंतरिक्ष है, उसकी खोज करनी है। मानो आजके पश्चिम के वैज्ञानिकोंको चुनौती देता है भारतका संत ! अरे, क्या बाहर-बाहरके अंतरिक्षमें खोज कर रहे हो ? जब तक भीतर के अन्तरिक्षकी खोज नहीं होगी, तब तक मानस निर्मल नहीं होगा। मानस निर्मल नहीं होगा तो बाहर की कितनी ही खोज क्यों न कर ले, अमंगलकारी हो जायेगी, हानिकारक हो जायेगी। उसका दुरुपयोग कर लेंगे। भीतर की खोज संपन्न हो जायेगी तो बाहरकी सारी खोजें कल्याणकारिणी हो जायेंगी। कल्याणके लिए खोज भीतर करनी होगी।

" ऐसा अम्बर चीन्हो मेरे भाई "। ऐसा अम्बर जो साढ़े तीन हाथ की काया में समया हुआ है। कैसे चीन्हें हमे ? कैसे अनुसंधान करें इसका ? लगभग ~~हजार~~ वर्ष पूर्व का यह संत कबीर कोई रास्ता ढूंढने लगा। तब तक तो भारत से अपने भीतर सत्यकी खोज करनेवाली कल्याणकारी वैज्ञानिक " विपश्यना " विद्या कब की लुप्त हो चुकी थी। लेकिन एक जिज्ञीसा जागी उस संत में। खोज तो करनी ही है। कैसे करे ? मनको एकाग्र करना होगा, मन को सूक्ष्म करना होगा। ऐसा सूक्ष्म, ऐसा तीक्ष्ण कि बींधते-बींधते; स्थूलका भेदन करते करते, विघटन करते करते, विश्लेषण करते करते उससे अधिक सूक्ष्म, उससे अधिक सूक्ष्म सत्य और अंततः परम सत्य तक पहुंचा दे। तो क्या करे ? उन दिनों की ध्यानकी जो एक विधा चलती थी उसके सहारे काम शुरू करता है यह संत। किसी शब्द का सहारा लेता है। बार-बार, बार-बार, मन ही मन उस शब्द को दोहराता है। दोहराते दोहराते चित्त एकाग्र होने लगता है। प्रारंभ में प्रयत्नपूर्वक शब्द दोहराता है। फिर तो बिना ही प्रयत्न के अनायास ऐसा होने लगा। वह जो जाप कर रहा था वह जाप अब अजपा जाप हो गया। अपने आप चलने लगा। अपने आप एक तार बंध गया भीतर। शब्द समाप्त हुआ तो गया गहराई में। पर देखता है कि आगे चलकर वह तार ही बाधक हो गया। अरे, तार जब तक है तब तक आगे जा ही नहीं सकता। अटक गयी बात। अब क्या करे ? चिंतन करता है, सोचता है क्या करे ? बाधा आ गयी। इस तारके सहारे सहारे एक अवस्था तक पहुँचा जहाँ चित्त एकाग्र होने लगा, सूक्ष्म होने लगा, सूक्ष्मतर होने लगा। अब यह तार ही बाधक हो गया। तब बात समझ में आयी और आगे बढ़ा कि –

" तागा टूटा, गगन बिनसिया,
सबद जु कहाँ समाई। "

अरे, शब्द से काम शुरू किया था। शब्द तो ससीम है। मुझे तो उस अनंत तक पहुँचना है जो इतना विशाल है, इतना महान है और साथ ही साथ इतना सूक्ष्म है, सूक्ष्मातिसूक्ष्म है। शब्द कैसे पहुँचायेगा वहाँ ? यह तागा कैसे पहुँचायेगा ? वह स्वयं ही नहीं पहुँच पायेगा वहाँ। वह इतना सूक्ष्म है कि उसमें समा ही नहीं पायेगा। तागा ही नहीं समा पाए तो शब्द कहाँ समायेगा। शब्द तो छूटा ही। यहाँ पहुँचकर तो तागा भी टूटा, विनष्ट हो गया। इस गगन में, इस शून्य में तागा रह नहीं सकता। टूटा तो ही प्राप्त हुई वह अवस्था जो अनंत है। महती महीयान, इतनी महान कि उससे महान और कुछ भी नहीं। और साथ साथ इतनी सूक्ष्म कि उससे सूक्ष्म और कुछ नहीं। पूर्णता प्राप्त हो गयी। ऐसी पूर्णता कि जिसमें सब कुछ समा गया। ऐसी पूर्ण कि जिस पूर्ण में से पूर्ण निकाल दें तो पूर्णता ही बचे। ऐसी पूर्ण ! ऐसी सूक्ष्म शून्य ! शून्य में से शून्य निकाल दें तो शून्य ही बचे। ऐसी पूर्ण। 'केवलं परिपुण्णं। और ऐसी निर्मल कि " केवलं परिसुद्धं। " जहाँ अशुद्धिका नामोनिशान नहीं।

उस परम सत्य तक पहुँचनेके लिए इस साढ़े तीन हाथ की काया के भीतर स्वयं काम करना पड़ता है। कोई दूसरा करे और लाभ मुझे मिल जाय, यह होता नहीं। प्यासा मैं हूँ, पानी कोई और पी ले तो मेरी प्यास बुझती नहीं। रोगी मैं हूँ, औषधिका सेवन कोई और कर ले तो मेरा रोग मिटता नहीं। परम सत्यका

साक्षात्कार किसी महापुरुषने किया, अवश्य किया, पर उससे मेरा दुःख तो दूर नहीं हुआ न? भले ही गर्व की हजार बाते करता रहूँ– हमारे देशमें ऐसे महापुरुष हुए, ऐसे महापुरुष हुए जो मुक्त हो गए सारे दुःखों से। परम सत्यका उन्होंने साक्षात्कार कर लिया। अरे, पर मुझे क्या मिला इससे? जब तक मैंने नहीं साक्षात्कार किया, तब तक मुझे कुछ नहीं मिला। स्वयं शोध करनी पड़ेगी हर व्यक्ति को, इस साढ़े तीन हाथ की काया के भीतर स्वयं अनुसंधान करना पड़ेगा, स्वयं खोज करनी पड़ेगी।

" जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ। "

स्वयं पैठना पड़ेगा। इन गहराइयों तक स्वयं जायेगा तो परम सत्य को उपलब्ध करेगा। कोरी बातों से कुछ उपलब्ध होता नहीं, प्रवचनों से होता नहीं। पोथी पढ़ने से होता नहीं। वाद-विवादों से होता नहीं। स्वयं खोज करनी होगी, अपने भीतर खोज करनी होगी। कितने आवरण पड़े हैं? सच्चाई पर कितने अवगुंठन पड़े हैं? एक-एक को उतारना पड़ेगा। सारे घूंघट के पट खोलने पड़ेंगे।

" घूंघट के पट खोल रे, तुझे पिया मिलेंगे। "

एक पट नहीं, अनेक पट। घूंघट के पट खोलते जा, खोलते जा। वह परम प्रिय, वह परम सत्य चाहें तो उसे परमेश्वर कहें, चाहे किसी और नाम से पुकारें, पर उस परम सत्य का साक्षात्कार तब होगा जब यह अवगुंठन उतारते चले जायेंगे। उतारते चले जायेंगे तो सारे उतार लेंगे। कोई दूसरा नहीं खोल सकता। हर व्यक्ति को अपने अवगुंठन के पट स्वयं ही खोलने होंगे।

इतनी स्थूल, इतनी घनीभूत काया? अरे, यह तो प्रकट सत्य है, भासमान सत्य है। ऐसा लगता है कि सचमुच काया बड़ी घनीभूत है। ऐसे ही यह मानस कितना घनीभूत लगता है। जब कोई भावावेश जागता है कितना घनीभूत होकर आता है! क्रोध जागे कि वासना जागे कि भय जागे कि ईर्षा जागे, कितना घनीभूत हो जाता है यह मानस! केवल तर्क–वितर्क चले तो भी कितना घनीभूत है मानस! घनीभूत हो जाता है तो आवरण चढ़ जाते हैं। परम सत्यको देखने नहीं देते। इस घनत्वको तोड़ना होगा, इसके टुकड़े-टुकड़े करने होंगे। इसीको विपश्यना कहते हैं। " विशेषेन पश्यतिऽति विपश्यना "। "विचयेन पश्यतिऽति विपश्यना।" विविध प्रकार से देखता है, विशेष प्रकार से देखता है, विचयन करके याने टुकड़े-टुकड़े करके देखता है – यह तो भासमान सत्य है, यह तो प्रकट सत्य है। परमार्थ सत्य क्या है? वास्तविक सत्य क्या है? तो विश्लेषण करते-करते, टुकड़े करते करते सूक्ष्मता की ओर बढ़ता चला जाता है। इसीको विपश्यना कहते हैं। सारे शरीर स्कंध का विघटन करते-करते; स्वानुभूतियों के स्तर पर, कल्पना द्वारा नहीं। आंख बंद करके किसी कल्पना में डूब गए– ऐसा एक परम सत्य होता है जो नित्य है, जो शाश्वत है, जो ध्रुव है। अब करो उसका ध्यान। याने करो उसकी कल्पना का ध्यान। क्योंकि हम उसे जानते नहीं। हमारी अपनी अनुभूति में तो कभी उतरा नहीं। सुनी-सुनाई बात। कल्पना ही करनी होगी ना? कोई कल्पना के सहारे चलेगा तो किसी बड़ी कल्पना में डूब कर रह जायेगा। जो सत्य अनुभूति के स्तर पर उतर रहा है उसी के सहारे विपश्यना करते हुए आगे बढ़ना है। जो स्थूल सत्य अनुभूति पर आया उसी को साक्षीभाव से देखें। यों साक्षीभावसे देखते-देखते अपने आप उससे सूक्ष्म सत्य प्रकट होने लगता है। उसे भी साक्षीभावसे देखें। साक्षीभावसे देखता चला जाय तो उससे भी अधिक सूक्ष्म सत्य, उससे भी अधिक सूक्ष्म सत्य प्रकट होता जाता है। जब तक भोक्ता भावसे भोगता है तब तक सूक्ष्म की ओर नहीं बढ़ सकेगा। तब तक तो घनीभूत भासमान सत्यकी भ्रामक माया छायी रहेगी। सारे मानस पर छायी रहेगी। इससे सूक्ष्म सत्य अनुभूति पर उतरेगा ही नहीं। ... (क्रमशः अगले अंक में)

साधकों के उदगार

केन्द्रीय सरकार के एक जिम्मेदार अधिकारी श्री मोहन ठाकुरदास नाथानी लिखते हैं कि " मुझे निरंतर सिर-दर्द की शिकायत रहा करती थी। अब इस साधना से मैं पूरी तरह रोग-मुक्त हुआ। इस साधना द्वारा मेरा जीवन अधिक प्रसन्नता से भर उठा है। भय बहुत कम हो गया है। लोगों के साथ मेरे संबंध बहुत सुधरे हैं। क्रोध तो लगभग समाप्त ही हो गया है। अनेक अप्रिय स्थितियों में देखता हूँ कि अब मुझे क्रोध नहीं आता। मादक पदार्थों के सेवन से और जुए के व्यसन से पूरी तरह मुक्त हो गया हूँ। मेरा भोजन शुद्ध शाकाहारी हो गया है। यहाँ तक कि चाय, काफी और सिगरेटका सेवन भी छूट गया है।

●

वरली, बम्बई में रहनेवाला सरकारी कर्मचारी विलासराव दगडू जावळे लिखता है कि इस साधना द्वारा मेरे व्यसन दूर हुए और जीवन व्यवहार में बहुत सुधार हुआ है। मैं इस साधनाके द्वारा समाजका एक अच्छा इंसान और सद्गृहस्थ बनना चाहता हूँ। जीवन-व्यवहारमें मैत्री भावना बढ़ाकर सबका मंगल देखना चाहता हूँ।

●

जीवनका चमत्कार

फिल्म अभिनेत्री शशिकला

सन् १९७१–७२ मेरे जीवनका बहुत संकटपूर्ण समय था। मैंने सफल अभिनेत्रीकी समृद्ध आजीविका का त्याग किया था, इस दृढ़ निश्चयके साथ कि अब इस जीवनमें फिर नहीं लौटना है। जो थोड़ी बहुत पूंजी मैंने बचा रखी थी वह भी उनको बांट दी जिनके प्रति कि मेरी जिम्मेदारियाँ थीं। मैंने इस आशासे एक नया जीवन आरंभ किया कि मुझे प्यार, शांति और खुशियाँ हासिल होंगी। परन्तु ... घृणा, अपमान और अशांति ही मिली। सब कुछ उलटा हो गया। मैं बिना पतवारकी नाव की तरह बहने लगी– निरर्थक, निराधार, निस्सहाय, निर्लक्ष्य। मेरे हृदयके टुकड़े-टुकड़े हो गए, मानस विदीर्ण-विक्षिप्त हो गया, आस्था नष्ट हो गयी, जीवन पर मेरी पकड़ छूट गयी। मैं आत्महत्या करनेके समीप थी।

जीवनकी इन अंधेरी घड़ियोंमें कुछ मित्रों ने मुझे सलाह दी कि मैं गुरुदेव श्री गोइन्काजी के " विपश्यना " में शामिल हो जाऊँ। और कोई आसरा नजर नहीं आया। अतः मैं एक शिविरमें शामिल हुई। जैसे-जैसे दिन बीतते गए, मेरी पीड़ाएँ कम होने लगी और कुछ-कुछ शांति महसूस होने लगी। मैं एक और शिविरमें

शामिल हुई। इस बार सारी व्याकुलता दूर हो गयी। मानस शांति से भर गया। आत्महत्याके विचार जो दिन-रात मेरे सिर पर सवार रहते थे, अब बिल्कुल विलीन हो गए। मैं प्रसन्नता से भर-भर उठी। मैंने एक चमत्कारका अनुभव किया। ऐसा चमत्कार जो अशांतिको शांति में बदल दे, भयको साहसमें बदल दे, निराशाको मुस्कराती आशामें बदल दे, अंधेरेको जीवंत उजालेमें बदल दे।

तदनन्तर मैंने अनेक शिविर लिये। मेरे जीवनमें प्रकाशभरी ऊषा का नवजागरण हुआ। मैं अमर पक्षीकी तरह चिताकी राखमें से पुनर्जीवित हो उठी।

मैं बम्बई लौट आयी। अब मित्रोंके चुनावमें मेरे निर्णय अधिक सही हो सके। मैंने फिर फिल्मी दुनियामें प्रवेश किया और सफल हुई। इस बार मैं दुर्जनों द्वारा हताहत नहीं हुई। पहले जो भूलें हुई थीं उनसे भी अब व्याकुल नहीं थी। मैंने अपनी शांति और सुख की दुनिया का स्वयं निर्माण किया। औरोंके लिए भी सुख-शांतिका कारण बन सकी।

मेरे लिए यह किसी चमत्कारसे कम नहीं हुआ। ऐसा चमत्कार जिसने एक मुर्दा व्यक्तित्वको नवजीवनकी उर्जा से भर दिया।

गुरुदेव गोइन्काजीका मंगल हो! वे स्वयं जिस प्रकार बोधि प्राप्त हैं वैसे औरोंको अपनी अपनी बोधि जगाने के कार्यमें सफल हों! भगवान तथागतका यह पावन मार्ग भारत तथा विश्वके सभी लोगोंको प्राप्त हो!

विपश्यना

विषय विकार भरे मन को न भाए जरा,
थू थू करे कहे कटु नीम है विपश्यना
गहरे न पै ठे, रहे तट पर बैठे,
बस वे ही कहते फिरें, कि अफीम है विपश्यना
धर्म रस चखने के बाद ही पता चले कि,
अद्भुत, अनंत है, असीम है विपश्यना।
जनमों के जमे संस्कार काटने के लिए,
तपी हुई लेसर की बीम है विपश्यना॥

रमेशचंद शर्मा,
संपादक, भारतीय कृषि अनुसंधान पत्रिका.

मोतीलाल बनारसीदास
बंगला रोड, दिल्ली.
की मंगल कामनाओं सहित

दूहा धरम रा

छण छण बढतो ही र वै, माया को जंजाल।
मनुवो उलझत ही र वै, हुवै हाल बेहाल॥
माया को चक्कर चलै, बढ़तो र वै प्रपंच।
मरुधर तणी मरीचिका, तिरसा बुझै न रंच॥
जो चावै परगट हुवै परम सत्य अनमोल।
तो माया का, मोह का, घूंघट का पट खोल॥
समभाव सूं निरखतां, मिलै सत्य को सार।
अमेछ मयी विपस्सना, धोवै चित्त बिकार॥
भटकत ही भटकत फिर्यो, मिल्यो न सुख को नाम।
ज्यूं भीतर निरखण लग्यो, मिल्यो परम सुख धाम॥
निरखत निरखत निरखतां, हुवै विकार असेस।
चित्त निपट निरमल हुवै, र वै न दुख को लेस॥

दोहे धर्म के

बंधन ही बंधन बंधें, जब जब भोगें भोग।
जगे द्वेष के दोष ही, जगे राग के रोग॥
बिना राग बिन द्वेष के सत्य देखता जाय।
सत्य देखते देखते, परम सत्य दिख जाय॥
परम सत्य पर भ्रांति के, परदे पड़े अनेक।
जो चाहे परदे हटें, विपश्यना से देख॥
झूठी कूड़ी कल्पना, करे सत्य से दूर।
सत्य दिखाय विपश्यना, मंगल से भरपूर॥
सम्यक् दर्शन ज्ञान का, ऐसा सुखद प्रभाव।
देखत देखत सब रुकें, राग द्वेष के स्राव॥
बाहर भटकत ना मिला, सुख का नाम-निशान।
भीतर खोजत मिल गयी, शांति सुखों की खान॥

सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक : **रामप्रताप यादव**, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२ ४०३. दूरभाष : ८६
मुद्रण स्थान : अक्षरचित्र मुद्रणालय, सातपूर, नासिक-४२२ ००७. टेलिफोन : ८८२५१ ● वार्षिक शुल्क रु. १०/- आजीवन शुल्क : रु. १००/-

विपश्यना " 5.84
पो. र. नं. NS(M) 16/84

Licence No. NS 18
Licensed to post without pre-payment

प्रेषक :
सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट
विपश्यना विश्व विद्यापीठ
धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३.
(नासिक, महाराष्ट्र)

To